SHIKSHA SAMVAD
International Open Access Peer-Reviewed & Refereed
Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 2584-0983 (Online)
Volume-02, Issue-01, September- 2024
www.shikshasamvad.com

समाजवादी चिंतक डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचारों की वर्तमान समय में प्रासांगिकता एवं आवश्यकता

नेहा शर्मा
शोधार्थिनी
श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरोला, अमरोहा (उ0प्र0)

डॉ0 सुशील कुमार
शोध पर्यवेक्षक
श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरोला, अमरोहा (उ0प्र0)

सारांश

डॉ0 राममनोहर लोहिया एक विश्व–नागरिक थे। अतः उनके दर्शन का विश्वव्यापी होना स्वाभाविक ही था। उनका दर्शन राष्ट्रीय सीमाओं में बंधा नहीं है। उनका चरित्र अन्तर्राष्ट्रीय है। उनके दर्शन की इस विशेषता का कारण उनका सम्यक् और व्यापक दृष्टिकोण है। उनकी मान्यता थी कि ''राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाएं अन्योन्याश्रित होती हैं। इस आधार पर वे कहा करते थे कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्याय और अत्याचार का अन्धकार व्याप्त रहता है, तो किसी भी हालत में राष्ट्रीय स्तर पर न्याय और सुव्यवस्था का प्रकाश नहीं लाया जा सकता है।''[1] इसी तरह यदि राष्ट्रीय स्तर पर विलासिता, भ्रष्टाचार और अन्याय का अन्धकार छाया रहता है, तो कभी भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समता, सम्पन्नता और स्वतन्त्रता आदि का प्रकाश नहीं आ सकता। किसी प्रकार यदि एक ही स्तर पर सुव्यवस्था स्थापित कर भी दी जाए, तो वह कभी भी ठहर नहीं सकती। विश्व में व्याप्त अन्धकार की स्थिति में राष्ट्र का प्रकाश उसी प्रकार नहीं ठहर सकता, जिस प्रकार राष्ट्रों के आन्तरिक अन्धकार में विश्व का प्रकाश। दुर्भाग्यवश अभी तक विश्व में एक ओर अन्धकार रहा है तो दूसरी ओर प्रकाश। ''डा0 लोहिया की दृष्टि में एक ओर प्रकाश और दूसरी ओर अन्धकार की यह विशेषता ही इतिहास के चक्र की चालक और दुःखद निराशा का कारण रही है।''[2]

डॉ0 राममनोहर लोहिया ने गाँधी– मार्क्स– नेहरू से इतर एक ऐसे समाजवाद की कल्पना की थी, जिसका उत्स युवा वर्ग की मनोवृत्तियों में निहित है। यही कारण था कि वह एक अध्येता की भाँति आजीवन भारतीय इतिहास, भारतीय सभ्यता और संस्कृति तथा भारत में ऐसे महापुरूषों की खोजबीन करते रहे, जो स्व की चेतना से अनुप्राणित और अनुशासित हो। लेकिन ऐसा महापुरूष उन्हें आम जनता की आत्माओं में समाहित मिला, जो अपनी स्वतंत्रता के लिए छटपटा रहा था। ऐसे उदात्त चिंतक में यथार्थ चेतना और संभाव्य चेतना के प्रत्ययमूलक तंतु विद्यमान थे। विखंडन के दौर में भी वह सभी को एक सूत्र में जोड़ने की बात कर रहे थे। डॉ0 राममनोहर लोहिया संयुक्त परिवार– व्यवस्था की संरचना के दरकने और उसकी टूटन को लेकर भी चिंतित थे। मधु लिमये के शब्दों में, कहें, तो ''लोहिया में एक 'भीतरी आँख' थी, जो सपने देखती थी। उन्होंने समस्त मिथ्यावाद, पाखंड, धूल–धक्कड़ और गरीबी के भीतर बहने वाली 'प्रगति की अन्तर्धारा' को खोज निकाला था और उसी से 'चेतना के जगत' का विस्तार मानते थे। लोहिया इस बात से परिचित थे कि देश में यथास्थितिवादी ताकतें मजबूत हैं, जिन पर शीघ्रता से काबू नहीं पाया जा सकता था। युगों के जड़त्व से आच्छादित विघटन, राज्य समेत सभी संस्थाओं पर अपना प्रभाव डाल चुका था। विघटन की यही स्थिति, विधानसभाओं, अदालतों, राजनीतिक दलों, प्रेस तथा अकादमिक समुदायों में भी थी। स्वयं का संवर्द्धन जीवन का नियंत्रण सिद्धांत बन चुका था। बावजूद इसके उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी, हार नहीं मानी। लोहिया अलग–अलग रहकर, कुर्सी पर बैठकर राजनीति करने वाले नेता नहीं थे। वह एक स्वप्नद्रष्टा तथा उसे साकार करने वाले, दोनों ही थे। उनका लक्ष्य था हमारे समाज में मौलिक परिवर्तन व उसकी पुनर्संयोजना, जो भारत को एक विश्व समुदाय में बराबर का सदस्य बना देगा।''[3]

डॉ0 लोहिया वर्ण–व्यवस्था को समाज का–एक कोढ़ मानते थे। आपने वर्ण और जाति में कोई भेद नहीं किया। डॉ0 लोहिया का कहना था कि ''वर्ण व्यवस्था बल द्वारा निर्मित व्यवस्था है, जिसमें गुण कर्म का कोई महत्व नहीं है।''[4] जाति एक अपरिवर्तनीय संरचना है, जो विचार और कर्म में दोगलापन प्रस्तुत करती है। जाति प्रथा के उन्मूलन के लिये डॉ0 लोहिया ने अन्तर्जातीय विवाहों और सहभोजों को महत्व दिया। आपका कहना था कि समाज और प्रशासन को इन्हें कड़ाई से लागू करना चाहिए। जातिप्रथा के उन्मूलन की दिशा में डॉ0 लोहिया ने ब्रह्मज्ञान और अद्वैतवाद की उपयोगिता को स्वीकार किया। आर्थिक दृष्टि से भी डॉ0 लोहिया ने जातिप्रथा को तोड़ने के साथ ही कमजोर तथा पिछड़ी जातियों को आर्थिक रूप से सबल बनाने और उनमें आत्मविश्वास की भावना जाग्रत करने की आवश्यकता पर बल दिया।

डॉ0 लोहिया की चौखम्भा योजना– डॉ0 लोहिया ने राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया। आपका कहना था कि केन्द्रित शक्ति के कारण आम जनता शक्ति के हाथों में कठपुतली मात्र होकर रह जाती है। आपने विकेन्द्रीकृत राज्य–व्यवस्था के चार स्तंभों के रूप में ग्राम, मण्डल, प्रान्त एवं केन्द्र का प्रतिपादन किया। इस व्यवस्था के तहत राज्य में जिला अधिकारी के पद को समाप्त कर दिया जायेगा। इसमें

उत्पादन, स्वामित्व व्यवस्था, कृषि सुधार योजना, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का प्रबंधन भी सम्मिलित होगा। डॉ0 लोहिया का मानना था कि देश में राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा जनमानस का उत्थान संभव है। डॉ0 लोहिया ने लिखा है ''चौखम्भा राज्य की परिकल्पना में स्वावलंबी गांव ही नहीं, वरन् समझदार और जीवित गांव की धारणा है।''[5]

डॉ0 लोहिया जाति–प्रथा जैसी अनेक रूढ़ियों एवं गुलामी से मुक्ति के लिए एक बड़े आन्दोलन की आवश्यकता महसूस करते थे। इसके लिए आपने समाजवाद को मूर्त रूप देने के लिए 'सात क्रान्तियों''[6] के सिद्धान्त का आह्वान किया, यथा–

1. नर–नारी की समानता के लिये।
2. चमड़ी के रंग पर रची राजकीय, आर्थिक और दिमागी असमानता के खिलाफ।
3. संस्कारगत, जन्मजात जातिप्रथा के खिलाफ पिछड़ों को विशेष अवसर देने के लिये।
4. विदेशी गुलामी के खिलाफ और स्वतंत्रता तथा विश्व लोक राज के लिये।
5. निजी पूंजी की विषमताओं के खिलाफ और आर्थिक समानता के लिये तथा योजना द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिये।
6. निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ और लोकतंत्रीय पद्धति के लिये।
7. अस्त्र–शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिये ।

आपका मानना था कि क्रान्तियां समाज को एक नए सिरे से गढ़ती हैं। (मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म से) जब तक हम इन क्रांतियों के लिये कार्य नहीं करेंगे तब तक समाजवाद के व्यापक सिद्धांत को व्यावहारिक रूप नहीं दे सकेंगे।

भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाँ कोई भी विचारक या विचारधारा धर्म की उपेक्षा करके नहीं चल सकती। इसीलिए जब प्रश्न उठाया जाता है कि धर्म को राजनीति से अलग करना चाहिए, तो हमें लोगों के आक्रोश का सामना करना पड़ता है। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीति में धर्म और धर्म में राजनीति का हमें स्वस्थ स्वरूप निर्धारित करना होगा। डॉ0 लोहिया की मान्यता थी कि–''धर्म और राजनीति का रिश्ता बिगड़ गया है। धर्म दीर्घकालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म। धर्म श्रेयस् की उपलब्धि का प्रयत्न करता है, राजनीति बुराई से लड़ती है। हम आज एक दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति में हैं, जिसमें कि बुराई से विरोध की लड़ाई में धर्म का कोई वास्ता नहीं रह गया है और वह निर्जीव हो गया है, जबकि राजनीति अत्यधिक कलही और बेकार हो गयी है।''[7]

डॉ0 लोहिया अक्सर कहा करते थे कि, ''उन पर केवल ढाई आदमियों का प्रभाव रहा, एक मार्क्स का, दूसरे गाँधी का और आधा जवाहरलाल नेहरू का।' इसमें कोई दो–राय नहीं कि डॉ0 लोहिया इन लोगों से प्रभावित भले हों, परन्तु इनका विचार स्वतंत्र अस्मिता और भारत के गरीबनवाज के रूप में पीड़ित जन को समर्पित है।

डॉ0 लोहिया एक ऐसे व्यक्तित्व को निर्मित करने में सक्षम हुए, जिन्होंने आम जनता के विरोध में खड़े होनी वाली किसी भी हस्तियों को नहीं बख्शा। वह गाँधी हों, मार्क्स हों या जवाहरलाल नेहरू हों। जब कभी उन्हें लगा कि कोई आजादी की लड़ाई में जनता के शोषण को बढ़ावा दे रहा है, तो अपने तेजस्वी विचारों से जनता को जागृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। डॉ0 लोहिया ने कभी–भी स्वतंत्रता आन्दोलन में समाज के उन तत्वों को नहीं बख्शा, जो भारत को आजाद कराने में स्वार्थ पर आधारित नीतियों का समर्थन करते थे। वे किसी की अनुकृति भी नहीं हो सकते थे। वे एक ऐसे संत थे, जिसे युग की परिस्थितियों ने योद्धा बना दिया। ऐसा योद्धा, जो संघर्षों में तपते–तपते संत बन गया। लेकिन मनुष्य इतिहास को किसी खास लौह–नियम या विचारों के साँचे में जकड़कर देखते रहने की उनकी कोई इच्छा नहीं रही। इसी कारण लोहिया अनेक नये विचारों के प्रतिपादक और व्याख्याता तो रहे, परन्तु किसी एक बंद विचार–प्रणाली के निर्माता नहीं बने।''[8]

डॉ0 राम मनोहर लोहिया भारत के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से साक्षात्कार करते हुए, प्रयास करते रहे कि भारत में आधुनिक जन–राजनीति के साथ–साथ एक सांस्कृतिक–क्रांति का माडल कैसे बनाया जाय, जिसमें पारंपरिक संस्कृति के मानवतावादी और बौद्धिक तत्त्व एक साथ समाहित हो जायें। देश की जड़ता से उनका आशय धार्मिकता के आवरण में पैठी साम्प्रदायिकता और जाति–व्यवस्था से था, जो एक खास तरीके से धर्म प्रभुत्व की द्योतक थी। यही कारण था कि वह एक सच्चे समाजवादी थे। कोई भी निर्णय लेने से पहले वह सोचते थे कि क्या इससे दबे–पिछड़े लोगों के जीवन में बदलाव आएगा कि नहीं।

डॉ0 राममनोहर लोहिया ने जिस समतापूर्ण समाज की कल्पना की थी, उसे रहस्य (The secreat)[9] नामक वैचारिक चलचित्र में आये तीन मूल्यों से प्राप्त किया जा सकता है। ये मूल्य समाज में रचनात्मक प्रक्रिया को व्यक्तिशः अपनाकर परिवर्तन हेतु हमें विवश कर सकते हैं। ये मूल्य हैं–1. प्रश्न करें। 2. विश्वास करें। और 3. प्राप्त करें।

सर्वप्रथम समाज में निवास करने वाले लोग स्वयं से प्रन करें कि जो हम भेदभावपूर्ण व्यवहार कर रहें हैं, वह समाज–सापेक्ष है या समाज–निरपेक्ष। यह प्रश्न व्यक्ति के माध्यम से सार्वजनिक फल की प्राप्ति में संभव हो सकता है। दूसरी बात, यदि समाज में अविश्वास की भावना व्याप्त है, तब सामाजिक सरोकार इसी में निहित है कि हम एक दूसरे पर विश्वास करें। तभी सम्पन्न समाज की प्राप्ति स्वतः हो सकती है। इन मूल्यों से निर्मित और पुनर्निर्धारित सामाजिक परिवेश में किसी भी वर्ग का व्यक्ति अपना जीवन निर्वाह सहजतापूर्वक कर सकता है। लेकिन भारत जननी का इतना बड़ा दुर्भाग्य है कि–समाज के विकास के नाम पर विनाश की गाथा गढ़ने में तथा कोई भी व्यक्ति अपने मानुषिक स्वभाव के विपरीत सामाजिक ढांचे को गिराने में अपनी पूरी शक्ति लगा दे रहा है। इसी कारण डॉ0 लोहिया यह अहसास करते थे कि–घूम–फिर करके हर मामला स्वनिर्माण और सर्वनिर्माण में टक्कर लेता है। इस टक्कर के बिना कुशलक्षेम भी नहीं। स्थिति इतनी बिगड़ गयी है कि परमार्थ के बिना आज कोई अच्छा स्वार्थ नहीं सध

सकता। किन्तु राष्ट्रीय मन इतना बिगड़ चुका है कि हर आदमी अपने हिस्से को बढ़ाना संभव और सहज समझता है और कुल भंडार को बढ़ाना कठिन। इसीलिए किसी भी ठोस कार्यक्रम में ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि वह असरदार ढंग से स्वार्थ को धकेले और परमार्थ को बढ़ाये। ''भारत के समाजवाद का... वर्षों में यही सबसे बड़ा पाप रहा है, उस समाजवाद का, जो गद्दी पर या उससे नजदीक रहा है। इस समाजवाद ने खाली नाम जप किया है, जनतंत्र का, बराबरी का, इहवाद का, राष्ट्रीयता का, अन्तर्राष्ट्रीयता का, क्रांतिकारिता का, किन्तु कभी कोई कोशिश नहीं की, कि इन सिद्धांतों का ठोस धागा काते और ऐसे ठोस धागों से सिद्धान्तों का ताना–बाना बुनता रहे। उलट, जबकि यह खुद नितांत खाली और बेमतलब रहा है, उसने हर समाजवादी प्रयत्न में सिद्धान्त और ठोस के लेन–देन को सिद्धांतविहीन बताया।''[10]

डॉ0 राम मनोहर लोहिया का मानना था कि ''स्त्री समाज के उत्पीड़न और दमन की रवायत उतनी ही पुरानी है जितनी यह सभ्यता। संसार में जितने भी प्रकार के अन्याय इस पृथ्वी को विषाक्त कर रहें हैं। उनमें से सबसे बड़ा अन्याय नर और नारी के भेद का है। संसार की विशाल मानवता किसी न किसी रूप में समता की इच्छुक तो है, लेकिन आधी से ज्यादा मानवता नारी की स्वतंत्रता के प्रति उदासीन है। आज भी अधिकतर स्त्रियों को सामूहिक जीवन में पुरूष के बराबर भाग लेने का अधिकार नहीं है'...संसार की गरीबी के खिलाफ चाहें कितनी लड़ाईयाँ लड़ी जायें, वे उस समय तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकतीं, जब तक कि समाज में नारी को उसका मौलिक अधिकार नहीं दिया जाएगा। इतना ही नहीं इस तथ्य की गहरी व्याख्या करते हुए संसार में अनेक प्रकार के भेदों से जाति–भेद और नर–नारी भेद को सबसे ज्यादा खतरनाक बताया गया है। भारतीय संदर्भ में भी उनका मत बड़ा ही स्पष्ट था कि– भारत की आत्मिक शक्ति में इतनी गिरावट का मुख्य कारण जातिप्रथा और नारी–वंचन है। क्योंकि बिना स्त्री की भागीदारी के सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक आन्दोलन को आगे बढ़ाया नहीं जा सकता। उन्हीं के शब्दों में कहें तो–सामाजवादी आन्दोलन में यदि स्त्रियाँ भाग नहीं लेती हैं या उनको भाग लेने का अवसर नहीं दिया जाता है, तो यह सारा आन्दोलन बिना वधू के विवाह जैसा लगेगा।''[11]

सामाजिक परिवर्तन के लिहाज से डॉ0 राम मनोहर लोहिया की दो धारणायें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। एक पिछड़ी जातियों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने की कोशिश और दूसरे नर–नारी संबंधों में समता स्थापित करने का प्रयास। डॉ0 लोहिया स्त्री के दुख को जानते थे, जानते ही नहीं थे, अनुभव भी करते थे। यह आकस्मिक नहीं है कि उन्होंने वर्ण–व्यवस्था के भीतर स्त्री को 'पाँचवा वर्ण' कहा और वर्ण–व्यवस्था को परम्परा का 'नासूर' बताते हुए समाज के भीतर सबसे ज्यादा वंचित दलित और स्त्री को माना, अर्थात् मुक्ति मार्ग के लिए दलित और स्त्री का निर्धारण एक साथ किया। उनका कहना था कि, ''जब तक शूद्रों, हरिजनों और स्त्रियों की सोयी हुई आत्मा का जगना देख कर उसी तरह खुशी नहीं होगी, जिस तरह किसान को बीज का अंकुर फूटते देख कर होती है, और उसी तरह जतन तथा मेहनत से उसे

फूलने–फलने और बढ़ाने की कोशिश न होगी, तब तक हिन्दुस्तान में कोई भी वाद, किसी तरह की नयी जान, लायी न जा सकेगी।''[12]

डॉ0 राममनोहर लोहिया ने भी कहा था कि, ''औरत को किस तरह की आजादी देना चाहते हो। मैं तो बिल्कुल गोली की तरह जवाब दे दूँगा। मेरा जवाब है कि मैं औरत को उस हद तक आजादी देना चाहता हूँ जितनी कि मर्द को देना चाहता हूँ।''[13]

प्रसंगतः डॉ0 राममनोहर लोहिया के द्वारा दिये गये स्त्री–मुक्ति संबंधी विचार इस वैश्विक युग में कारगर साबित हो सकते हैं। नामवर सिंह ने भी यह स्वीकार किया है कि, ''लोहिया पश्चिम के नारी–मुक्ति आन्दोलन से काफी पहले इस तरह का आन्दोलन चला चुके थे और वह स्त्री और पुरूष की बराबरी की बात करते थे। जहाँ तुलसी जैसे संत कवि नारी के प्रति हिन्दू समाज में व्याप्त विचार से उबर नहीं सके, वहीं लोहिया लोकमानस को कामयाब करने में कामयाब रहे। शायद लोहिया के प्रभाव के चलते ही हिन्दी में किसी कवि ने लिखा था– एक नहीं दो–दो मात्राएं, नर से भारी है नारी।''[14]

वस्तुतः डॉ लोहिया के विचार एक–दूसरे से इस प्रकार अन्तर्संबंधित हैं, जिन्हें अलग–अलग करके आत्मसात् करना असंभव है, वह चाहें समाज संबंधी हों, नारी संबंधी हों या हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम से जुड़े हों। डॉ0 लोहिया का सारा चिंतन संगठित है, और यही कारण है कि ''कोई एक समस्या दूसरी से अलग नजर नहीं आती।....यह चिंतन पद्धति एक प्रकार का आत्मसंघर्ष है। हिन्दुस्तानी जाति के मौजूदा और पिछले इतिहास का अध्ययन तकलीफदेह है, और इस तकलीफ की स्पष्ट छाप डॉ0 लोहिया की पुस्तकों पर है।....उनकी यह तकलीफ हर उस व्यक्ति के लिए है, जो अपने समय से बंधा हुआ होकर भी अजनबी है। डॉ0 लोहिया हिन्दुस्तानी समाज के आत्म–निर्वासित हैं। समाज ने उन्हें देश निकाला नहीं दिया, बल्कि स्वयं श्री लोहिया ने निर्वासन पसंद किया। इस तरह का निर्वासन आज के हर विद्रोही की नियति है।''[15]

डॉ0 राममनोहर लोहिया इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि किसी भी समाज को समरस बनाने के लिए भाषिक समझ आवश्यक है, लेकिन वह भाषा देश की भाषा हो।

वर्तमान में भाषा का प्रश्न भी देश के जनजीवन को आन्दोलित कर रहा है, इस पर भी डा0 लोहिया के विचार सर्वाधिक विचारणीय हैं। डा0 लोहिया भारत जैसे विकासशील एवं निर्धन देश के लिये राष्ट्रभाषा के रूप में ऐसी भाषा को स्थायित्व प्रदान करना चाहते थे, जो देश की बहुसंख्यक आबादी आसानी से समझ एवं पढ़–लिख सके। इस तरह की भाषा में डा0 लोहिया ने भारतीय समाज में हिन्दी भाषा को स्थापित करना चाहा। डा0 लोहिया कहते थे कि लोकभाषाओं को स्थानीय कार्यों के लिए स्थान देना चाहिए, क्षेत्र–विशेष में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग खुलकर होना चाहिए। इससे वहां के लोगों का विकास तो होगा ही, साथ ही भाषा का भी विकास होगा।

डॉ0 राममनोहर लोहिया राष्ट्रीयता के प्रश्न को भाषा के साथ जोड़कर 'अंग्रेजी हटाओ' का आंदोलन ही नहीं छेड़ते हैं, अपितु इसके गहरे निहितार्थ, पुख्ता तर्क और सामाजिक सांस्कृतिक औचित्य भी सिद्ध करते हैं। वह स्पष्टतः घोषणा करते हैं कि, ''अंग्रेजी भाषा से न तो शरीर को आराम, न मन को सुख मिल सकता है। जहाँ आज एक मन गेहूँ या चावल पैदा होता है, वहाँ दूसरे कारण भी हैं, जिनको दूर करना पड़ेगा, लेकिन अंग्रेजी मात्र के हट जाने से मेरा विश्वास है कि दो मन होने लगेगा। जहाँ एक मशीन बनती है, वहाँ दो मशीनें बनने लगेंगी। और यह बात मैं आपको तर्क के साथ बताऊँगा कि खेती कारखाने का सुधार, बढ़ती पैदावार, मात्र मातृभाषा और जन–भाषा के इस्तेमाल से होगी।'' इसके लिए वे ईसाई भाषा की प्रवर्तक आरमीक भाषा और इनकी धार्मिक भाषा को कृष्टोस कहते हुए उनके अंग्रेजी प्रयोग को एक सिरे से खारिज करते हैं। क्योंकि जहाँ कहीं ईसाई हैं, जर्मनी में जर्मन, मेक्सिकों में जहाँ की भाषा स्पेनी हो चुकी है स्पेनी, इंगलिस्तान में अंग्रेजी में, अपना धर्म चलाते हैं। इसका कारण वह बताते हैं कि–शब्द आसमान से नहीं टपकता, शब्द जुड़ा हुआ रहता है, देश की मिट्टी के साथ, देश के इतिहास के साथ, कथाओं और किवदंतियों के साथ। जैसे गंगा शब्द कोई सुनता है भारतवर्ष में, तो गंगा का जो मतलब होता है, वह न जाने कितना ढेर–सा चित्र दिमाग में एक साथ आ जाता है। तो शब्द अकेला नहीं होता। ''मैं इतना कहूँगा कि मन का सुख अंग्रेजी के द्वारा प्राप्त करना असंभव है, सहायक हो सकता है। अपनी नींव अलग से रखो, और उसमें और भी कई भाषाओं का मजा लेना चाहो और उतनी फुर्सत हो तो ले सकते हो। एक चीज याद रखना, यह सब इसलिए नहीं है कि अंग्रेजी विदेशी भाषा है। यह तो है ही। लेकिन खाली विदेशी होने से बात समझ में नहीं आती। विदेशी भाषा, लेकिन उसके साथ ही साथ सामंती भाषा है, ठाट–बाट की, शान–शौकत की, बड़े लोगों की, धनवानों की ,एक प्रतिशत लोगों की सामंती भाषा है। और अपने देश पर संस्कृति का यह कोढ़ फूट रहा है– एक तरफ सामंती संस्कृति और दूसरी तरफ जनता की संस्कृति, जो डेढ़–दो हजार वर्ष से चली आ रही है।''[16]

लोहिया जी कहते थे कि ''मैं नहीं कहता बंगाली देश में हटाओ, तेलगू देश में हटाओ, तमिल देश में हटाओ। वैसे मुझसे पूछेंगे तो मैं उन्हें भी यही जवाब दूँगा।.....प्रधानमंत्री ने आश्वासन दे दिया कि अंग्रेजी तो तब तक नहीं हटेगी जब तक गैर हिन्दी सूबे राजी नहीं हो जाएँगे, तो प्रधानमंत्री का आश्वासन बड़ा कि संविधान का आश्वासन बड़ा। मुझे तो यह देश कभी–कभी समझ में नहीं आता। एक आदमी का आश्वासन इतना बड़ा हो गया कि सबसे बड़ा कानून है दस्तूर है, उसमें जो लिखा हुआ है सब मटियामेट। इसके अलावा सारे देश की भलाई करना होगा या एक आदमी के पीछे दौड़ना पड़ेगा। सारे देश की भलाई अब इसी में है कि तेलगू, तमिल और बंगाली लोगों से बहस करना बंद करें। और वे लोग जब कभी उनकी इच्छा में आये हिन्दी को अपनायें।''[17] कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डॉ0 लोहिया भाषा के स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं का पूरा सम्मान करते हैं। यही कारण था कि डॉ0 लोहिया भी मानते थे कि, हिन्दी की दुर्दशा आज ऐसे ही बुद्धिजीवियों के कारण हुई है, जिन्हें इतना भी नहीं पता है कि हिन्दी

900 साल से भी अधिक पुरानी है। हम जब तक अपनी ही भाषा को नहीं जानेंगे, तो लड़ेंगे कैसे? उसी का फायदा अंग्रेजी परस्त लोग और बुद्धिजीवी उठा रहे हैं। अतः हिन्दी की सबसे बड़ी दुर्गति साठ के दशक में हुई, क्योंकि इसी समय उत्तर में 'अंग्रेजी हटाओ' और दक्षिण भारत में 'हिन्दी हटाओ'[18] के राजनैतिक दाव–पेंच में भाषा कैसे प्रभावित होती है, यह देखने को मिला। इस तरह डॉ0 राममनोहर लोहिया ने न केवल हिन्दी, अपितु सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं का समर्थन करके समकालीन समस्याओं से मुक्त करके सर्जना के स्तर पर भाषिक एकीकरण करते हुए सांस्कृतिक समानता की बात को सिद्ध करने का प्रयास किया।

वर्तमान की राजनीतिक उथल–पुथल में आज डॉ0 लोहिया जी की प्रासंगिकता सर्वाधिक है, क्योंकि आपका स्वदेशी मन जिस कर्त्तव्य–बोध से बँधा था, उसमें सत्ता मोह की अपेक्षा जनशक्ति और जन की इच्छा–शक्ति को संगठित करने के प्रति विशेष इच्छा है। हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीति को केवल सत्ता की लालसा रहेगी, यह तो संभव नहीं है। उसके लिए जन इच्छा तथा जन शक्ति पर आधारित सत्ता होनी चाहिए। डॉ0 लोहिया ने समाजवादी विचारधारा का केवल विश्लेषण ही नहीं किया, बल्कि उसका निदान भी बताया। अतः स्पष्ट है कि डॉ0 लोहिया के विचार ही देश और समाज में एकता ला सकते हैं, क्योंकि उनके विचारों में चिन्तन की गहराई के साथ कर्म की ऊर्जा पैदा करने की क्षमता है। समाज कैसे बदले, देश का आर्थिक ढाँचा कैसे सुधरे, निरन्तर बढ़ते हुए अन्यायों, अत्याचारों का प्रतिकार कैसे हो, विषमताएँ दूर करने के क्या–क्या उपाय हैं ? ये आज के ज्वलन्त प्रश्न हैं, जिनका उत्तर डॉ0 लोहिया के समाजवादी दर्शन में मिलता है।

वर्तमान राजनेताओं के चाल, चरित्र और चेहरे के फर्क को देखकर आवश्यक हो जाता है कि हम डा0 लोहिया सरीखे नेताओं के विचारों का पुनर्पाठ करें क्योंकि आज शायद अपवाद स्वरूप ही कोई भी व्यक्ति राज्यसभा और लोकसभा में जनसेवा के लिए जाता हो। हकीकत तो यह है कि अधिकतर लोग पद और पैसे के लिए ही जाना चाहते हैं। आज सदन में स्वस्थ्य बहस का अभाव दिखायी देता है। समय–समय पर हमारे नेताओं का छिछलापन भी दिखायी देता रहता है। ऐसे परिवेश में डा0 लोहिया याद आते हैं। डॉ0 लोहिया कहते थे, ''जिस बात को ठीक समझो उस पर अड़ जाओ । सही बात के लिए समझौते मत करो''[19] इसलिए लोहियावादी न होते हुए भी आधुनिक काल के हिन्दी के प्रख्यात आलोचक डॉ0 नामवर सिंह भी डॉ0 राममनोहर लोहिया को गाँधी के बाद पाखंडरहित दूसरे बड़े राजनेता मानते हुए यह कहने से नहीं चूके कि, ''मैं लोहियावादी नहीं हूँ, लेकिन वह मुझे आकर्षित करते थे। मुझे कई बार लोहिया को सुनने का मौका मिला है। गाँधी के बाद लोहिया दूसरे बड़े राजनेता थे, जो पाखंडरहित थे। यहाँ तक कि नेहरू में भी पाखंड था।'' इसी क्रम में वह कहते हैं कि,''राजनीति में व्यक्ति के कई चेहरे होते हैं। और ऐसा लगता है कि वह मुखौटे लगाये हुए हैं, जबकि लोहिया पारदर्शी व्यक्तित्व के धनी थे।...वर्तमान

समय में जब सभी विचारधाराएँ पिट चुकीं हैं, ऐसे में लोहिया जैसे इतिहास पुरूष सृजन की प्रेरणा दे सकते हैं।''[20]

डॉ0 लोहिया के कालजयी होने के कारण साफ हैं वह अपने लिए नहीं जिए, उनका समाजवाद कोरा समाजवाद नहीं था, वह आम आदमी के सच्चे हितैषी थे। वह चाहते तो कोई भी पद उन्हें सर्वसुलभ हो जाता, लेकिन वह पद के लिए नहीं, बल्कि पद्दलितों के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। वे सादगी और सच्चाई की प्रतिमूर्ति थे। वे जिस भी विषय पर बोलते थे, उसमें मौलिकता और निर्भीकता होती थी। वे सीता–सावित्री पर बोले, शिव–पर्वती पर बोले, हिन्दू–मुसलमान या नर–नारी समता पर बोले, अंग्रेजी हटाओ या जात तोड़ो पर बोले– उनके तर्क प्राणलेवा होते थे। जो एक बार डॉ. लोहिया को सुन ले या उनको पढ़ ले, वह उनका मुरीद हो जाता था। डॉ0 लोहिया ने अपने भाषण और लेखन में जितने विविध विषयों पर बहस चलाई है, देश के किसी अन्य राजनेता ने नहीं चलाई।''[21]

शांति दूत डा0 लोहिया के उपर्युक्त सभी विचार सम्यक् दृष्टि और आशावाद से रंजित हैं। इस आशावाद से साक्षात्कार करने के लिए भय और आशंका से भरे आज के विश्व के समक्ष इतनी कठिनाइयां हैं कि निराशावादी व्यक्ति इन विचारों को केवल कल्पना अथवा स्वप्न की संज्ञा देगा। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि आशावादी मानवीय प्रयत्न इस ओर बढ़ें, तो वे संकुचित भावनाओं की दीवारों को तोड़कर गिरा सकते हैं। ''इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि अपनी अपूर्णताओं और भिन्नताओं के बावजूद मानव निरन्तर संगठन के उच्चतर स्तर पर चढ़ता गया है। यदि ऐसा न होता, तो हम आखेट–युग और संयुक्त राष्ट्रसंगठन के युग में भारी अन्तर को किस प्रकार देख पाते? जिस प्रकार आखेट युग अथवा नगर राज्यों के युग के लिए आज की दुनिया एक रहस्यमय कल्पना थी, उसी प्रकार आज के व्यक्ति के लिए विश्व–सरकार एक सुन्दर स्वप्न हो सकता है। परन्तु डा0 लोहिया के बताये हुए मार्ग पर अनवरत रूप से चलकर हम उस सुन्दर स्वप्न तथा रहस्यमय कल्पना को इस धरती पर उतार कर सामंजस्यपूर्ण सुखद विश्व का निर्माण कर सकते हैं।''

: सन्दर्भ सूची :

1. दीक्षित ताराचन्द–डा0 राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन–लोकभारती प्रकाशन महात्मा गीधी मार्ग, इलाहाबाद, पहला पेपरबैक्स संस्करण–2013, पृ0 203–204
2. लोहिया, डॉ0 राममनोहर, इतिहास–चक्र (Wheel of History), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करणः 1999, पृ0 80
3. किशोर, गिरिराज– अकार, त्रैमासिक पत्रिका, अगस्त–नवंबर 2010, पृष्ठ–181
4. शरद ओंकार (संपादक)–लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2006, पृष्ठ 100–124

5. चंद्र, हरीश–डा0 लोहिया की कहानी उनके साथियों की जुबानी–नोएडा न्यूज प्रा0 लि0, 48 श्रद्धानन्द मार्ग–दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2010, पृष्ठ 19–20
6. शरद, ओंकार (संपादक)–लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2000, पृष्ठ–11
7. शरद ओंकार (संपादक)–राममनोहर लोहिया–भारतमाता धरती माता, लोक भारती, प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ–9
8. मंत्री, गणेश–मार्क्स, गाँधी और समसामयिक संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृष्ठ–129
9. The Secret Film, www.Thesecret.tv (रहस्य)
10. शरद, ओंकार (संपादक)–समता और संपन्नता (डॉ0 राममनोहर लोहिया के अप्रकाशित लेख)–लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण :2015, पृष्ठ–146
11. कथाक्रम–डॉ0 लोहिया–मार्क्स, गाँधी, सोशलिज्म–अक्टूबर–जून 2011
12. लोहिया डॉ0 राममनोहर, हिन्दू बनाम हिन्दू, लोकभारती प्रकाशन, चतुर्थ पेपर बैक्स संस्करण : 2019, पृष्ठ–23
13. लोहिया, डॉ0 राममनोहर, इतिहास चक्र, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण : 2018, पृष्ठ–62
14. सिंह, डॉ0 नामवर द्वारा मार्च 2010 को नई दिल्ली में आयोजित संगोश्ठी में दिये गये वक्तव्य पर आधारित
15. वर्मा, श्रीकांत, रचनावली, खंड–3, पृष्ठ–67–68, एवं स्त्री मुक्ति : लोहिया की आवाज, एवं अरविन्द त्रिपाठी, कथाक्रम, अप्रैल–जून 2011, पृष्ठ–46
16. शरद, ओंकार (संपादक)–समता और संपन्नता (डॉ0 राममनोहर लोहिया के अप्रकाशित लेख) लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण :1999, पृष्ठ–90
17. शरद, ओंकार (संपादक)–समता और संपन्नता (डॉ0 राममनोहर लोहिया के अप्रकाशित लेख)–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण :2001, पृष्ठ–101
18. शरण, शंकर–विखंडन की संस्कृति, संपादकीय, जनसत्ता समाचार पत्र, 31 दिसंबर 2011, पृष्ठ–6,
19. पाठक, नरेन्द्र– कर्पूरी ठाकुर और समाजवाद –मेधा बुक्स–एक्स–11 नवीन शाहदरा, दिल्ली, प्र सं. 2018, पृ023
20. नई दिल्ली में लोहिया जन्मशती पर आयोजित त्रि–दिवसीय संगोष्ठी, मार्च 2010
21. वेदप्रताप वैदिक–यह लोहिया की सदी हो, दैनिक भास्कर–सतना (म.प्र.), 23 मार्च 2022

SHIKSHA SAMVAD

An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed or Refereed Research Journal
ISSN: 2584-0983 (Online) Impact-Factor, RPRI-3.87
Volume-02, Issue-01, Sept.- 2024
www.shikshasamvad.com
Certificate Number-Sept-2024/14

Certificate Of Publication

This Certificate is proudly presented to

नेहा शर्मा और डॉ0 सुशील कुमार

For publication of research paper title

"समाजवादी चिंतक डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचारों की वर्तमान समय में प्रासांगिकता एवं आवश्यकता"

Published in 'Shiksha Samvad' Peer-Reviewed and Refereed Research Journal and E-ISSN: 2584-0983(Online), Volume-02, Issue-01, Month September, Year- 2024, Impact-Factor, RPRI-3.87.

Dr. Neeraj Yadav
Editor-In-Chief

Dr. Lohans Kumar Kalyani
Executive-chief- Editor

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper must be available online at www.shikshasamvad.com